Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) e- ISSN: 2582-2004
Volume 03, Issue 01

DOI: 10.46523/jarssc.03.01.07 Open Access

समकालीन विमर्श और हिन्दी उपन्यास

अमित कुमार
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर

समकालीन विमर्श से तात्पर्य सामान्यतः उन विषयों पर विचार करने से होता है जो किसी समय अथवा युग में वर्तमान हों, अर्थात् किसी समय किसी विषय विशेष को लेकर किये जाने वाले विचारों को उस समय का विमर्श कहा जाता है जैसे कि आज वर्तमान समय में दलित, स्त्री, आदिवासी, भूमण्डलीकरण आदि विषयों पर व्यक्त किये गये विचारों को समकालीन विमर्श कहा जाता है। अजय तिवारी के शब्दों में- ''जिन्हें समकालीन विमर्श कहा जाता है वे चाहे दलित विमर्श हो या स्त्रीवादी चिन्तन, चाहे नवइतिहासवादी विमर्श हों या पाठक केन्द्रित आलोचना, चाहे सांस्कृतिक विमर्श हो या समलैंगिक अस्मिता सबके सब एक बात में समान हैं, वे आन्दोलन के गर्भ से उपजे हैं, उनकी सैद्धान्तिकी समाजैतिहासिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों की सघः एकता से निर्मित हुयी है।''[१] इस तरह समकालीन विमर्श को केन्द्र में आने के लिए यह जरूरी है कि वह आन्दोलन का रूप धारण करे जिससे उसे विकास मिल सके। डॉ० विनोद कुमार गोंड साहित्य में समकालीन विमर्श पर विचार करते हुए लिखते हैं कि- ''हिन्दी साहित्य में समकालीन विमर्श का उद्‌भव और उसका उत्तरोत्तर विकास समाज, देश और युवा पीढ़ी को एक नई दृष्टि प्रदान करता है। समकालीन विमर्श के अन्तर्गत मुख्यतः दलित, स्त्री और आदिवासी ये तीनों ही आज वर्तमान में विमर्श का मुद्‌दा और बहस का विषय बने हुए हैं। आज विमर्श का मुद्‌दा गहन चिन्तनशीलता का विषय बन चुका है।''[२]

उत्तर आधुनिकता के साथ १९८०-९० के दशक में हिन्दी उपन्यास में विमर्शों के अनेक रूप उभरकर सामने आये हैं जिनमें दलित, स्त्री, आदिवासी अल्पसंख्यक, भूमण्डलीकरण आदि विमर्श हैं जो समाज में आधुनिक वैश्वीकरण के खिलाफ आवाज का परिणाम हैं। जिनपर समय-साथ पर लेखकों तथा समाज सेवकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। हिन्दी साहित्य के लेखक भी इससे अछूते नहीं रह सके। उन्होंने अपने लेखन में समाज की इन बहुत सी समस्याओं को उठाने के लिए उन्हें औपन्यासिक रूप प्रदान किया है। समकालीन समय में विभिन्न संग्रहों, पत्र एवं पत्रिकाओं में जो

Received: 25.04.2020 Accepted: 19.05.2020 Published: 20.05.2020

औपन्यासिक कहानियाँ या उपन्यास प्रकाशित हो रहे हैं अथवा हुये हैं उन्हें हम समकालीन कथा अथवा उपन्यास साहित्य की संज्ञा देते हैं।

हिन्दी उपन्यासों में समकालीन विमर्शों की अवधारणा बहुत नई नही है। शुरूआत के हिन्दी उपन्यासों से लेकर प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र, निराला आदि के उपन्यासों में भी ये विमर्श कहीं न कहीं दिखाई देते हैं किन्तु ये विमर्श, विमर्श की सत्ता में नहीं बल्कि सामाजिक औपन्यासिक सत्ता के रूप में दिखाई देते हैं। जिनमें लेखक विमर्श की दृष्टि से नहीं सामाजिक दृष्टि से विचार करता है। जबकि आज के समसामयिक उपन्यासकार अपने बहुत से उपन्यासों का लेखन इन्ही विमर्शों को केन्द्र बनाकर लेखन कार्य कर रहे हैं जिसका केन्द्र आम आदमी है। डॉ० चन्द्रकान्त वांदिकडेकर के शब्दों में- ''सामयिक हिन्दी उपन्यास संसार का आदमी आज दुःखी है, त्रास और कष्ट से पीड़ित है, वह जीवन से ऊब गया है। अपनी अकिंचनता एवं अशक्ति का बोध भी उसे हो गया है।''[३]

आज हिन्दी उपन्यासकारों में समकालीन माने जाने वाले उपन्यासकारों की एक नयी पीढ़ी उभरी है जिनमें समस्त चेतना और संवेदना की झाँकी दिखाई देती है। समकालीन उपन्यासों में व्यक्तित्व बोध, युगबोध, भावबोध तथा नई संवेदना दिखाई देती है जिनमें यथा स्थितिवाद के स्थान पर संघर्ष एवं विद्रोह के आन्तरिक पक्षों का चित्रण होने लगा है।

हिन्दी उपन्यास लेखन का कार्य वैसे तो भारतेन्दु युग से ही प्रारम्भ हो गया था जब लेखकों ने शुरूआती लेखन में विविध विषयों से युक्त भाग्यवती (१८७७), वामा शिक्षक आदि जैसे उपन्यास लिखे। इस विषय पर गोपालराय कहते हैं कि ''भारतेन्दु काल के लेखकों ने मध्यवर्गीय पाठकों की मांग पर नहीं बल्कि देश हित से प्रेरित होकर उपन्यास लिखे थे।''[४] भारतेन्दु के पश्चात् द्विवेदी युग में उपन्यास लेखन की परम्परा आगे बढ़ी जिसे हिन्दी साहित्य का नवजागरण काल कहा गया। गोपालराय का कथन है कि-''हिन्दी उपन्यास का नवजागरण से गहरा सम्बन्ध है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया कुछ देर में प्रारम्भ हुयी इसलिए हिन्दी में उपन्यास का आरम्भ भी बांग्ला और मराठी की अपेक्षा तनिक बाद में हुआ।''[५] इस समय हिन्दी में अनेक उपन्यास जैसे गौरीदत्तकृत-'देवरानी जेठानी की कहानी', फुल्लौरीकृत-'भाग्यवती', श्रीनिवासदासकृत-'परीक्षागुरू' आदि उपन्यास लिखे गये जिनमें विविध विषयों का समम्हार किया गया तथा विविध पत्र-पत्रिकाओं में उपन्यासों से सम्बन्धि लेख भी लिखे गये। हिन्दी उपन्यास की शुरूआत परीक्षा गुरू से मानी जाती है। यहीं से उपन्यासों के विकास का क्रम चलता है और यहीं से विविध

Received: 25.04.2020 Accepted: 19.05.2020 Published: 20.05.2020

विमर्शों का उभार हिन्दी उपन्यासों में आने लगता है। हिन्दी साहित्य में विमर्श कहानी तथा उपन्यासों के माध्यम से निरन्तर उभरता रहा है किन्तु शुरूआत में इनमें विमर्श, विमर्श के रूप में नहीं था नहीं तो प्रेमचन्द्र के उपन्यासों 'रंगभूमि', 'गोदान' आदि में दलित एवं स्त्री विमर्श सामने आ गये होते क्योंकि प्रेमचन्द्र ने अपने उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ का चित्रण किया है। प्रेमचन्द्र के पश्चात् जहाँ निराला तथा प्रसाद के उपन्यासों में स्त्री की वेदना के स्वर सुनाई देते हैं वहीं जैनेन्द्र की वास्तविक पहचान एक स्त्री को पुरुष के सामने चुनौती देते हुए प्रस्तुत किया गया है। वृन्दावन लाल वर्मा ने समकालीन समस्याओं पर आधारित उपन्यास 'संगम' (१९२७), 'कुण्डलीचक्र' (१९३२) आदि लिखे।

प्रेमचन्दोततर काल में जैनेन्द्र का उपन्यास 'त्यागपत्र' स्त्री विषयक परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। यशपाल के उपन्यास 'दिव्या' (१९४५) में भी सामन्ती व्यवस्था में स्त्री जीवन की कथा कही गयी है। नागार्जुन के उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' (१९४८) में किसानों और जमींदारों के बीच संघर्ष का चित्रण है। अमृम लाल नागर के उपन्यास 'बूंद और समुद्र' (१९५६) में भारतीय नारी जीवन की त्रासदी और ममता का अंकन दिखाई देता है जिसमें सामन्ती मूल्यों से जकड़ी हुयी स्त्री मुक्ति के लिए संघर्ष करती हुयी दिखाई देती है। इन्हीं के उपन्यास 'नाच्योबहुत गोपाल' में दलित वर्ग का सजीव चित्रण हुआ है। फणीश्वर नाथ 'रेणु' के उपन्यास 'मैला आंचल' (१९५४) में पूर्णिया (बिहार) में होने वाले शोषण तथा जातिगत आधार आपस की फूट का यथार्थ चित्रण हुआ है। महुआ मांझी के उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ', 'मैं बोरिसा इल्ला' श्री प्रकाश मिश्र कृत 'रूप तिल्ली की कथा' शिव प्रसाद सिंह के 'शैलूष' संजीव के 'सर्कस' तथा 'धार तथा मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्माकबूतरी' आदि उपन्यासों में आदिवासी जीवन की त्रासदी का सजीव तथा मार्मिक चित्रण हुआ है समकालीन विमर्शों में आदिवासी विमर्श भी उभरकर आज एक बड़े विमर्श के रूप में सामने आया है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'जिन्दगीनामा' (१९७९) में औपन्यासिक यात्रा का चरम विकास दिखाई देता है जिसमें पंजाब का समग्र जीवन अपनी सांस्कृतिकता एवं ऐतिहासिकता के साथ दिखाई देता है। मन्नूभण्डारी के उपन्यास 'महाभोज' (१९७९) में भारतीय राजनीति के कुत्सित व्यवहार को उजागर किया गया है। उपन्यास में दलितों तथा उनकी बस्ती की तबाही करते हुए उन लोगों को दिखाया गया जिनकी राजनीतिक सत्ता सदियों से हैं। जैनेन्द्र द्वारा लिखित उपन्यास 'दशार्क' (१९८३) में जीवन के यथार्थ एवं उनमें निहित समस्याओं का चित्रण किया गया है। पंकज बिष्ट का उपन्यास

Received: 25.04.2020 Accepted: 19.05.2020 Published: 20.05.2020

'उस चिड़िया का नाम' (१९८९) अपने पारम्परिक फ्रेम को तोड़ता हुआ उस समस्या को उजागर करता है जो आज के समय में व्यक्ति के विघटन तथा स्त्री जीवन के संघर्ष की गाथा है। उपन्यास में समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र जैसे अनुशासनों को विनस्य कर एक बड़े विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें पूरे उपन्यास का दर्शन मानवीयता है। यह आधुनिक जीवन की समस्याओं का उपन्यास है जिसमें जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण किया गया हैं

समकालीन सामाजिकता के वैविध्य से समृद्ध उपन्यासों में मुस्लिम समाज का जीवन भी उभरकर आज अल्पसंख्यक विमर्श के रूप में सामने आया है जिसमें बहुत से मुस्लिम तथा अन्य लेखकों ने उपन्यास लेखन के द्वारा मुस्लिमों की समस्याओं को उठाया है जिनमें राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' (१९६६), 'कटरा बी आरजू' (१९७८), अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' (१९८६), मंजूर एहतेशााम का 'सूखा बरगद' (१९८६), असगर वज़ाहत का 'सात आसमान' आदि उपन्यासों में मुस्लिम जीवन की संरचना, संघर्ष, विद्रोह आदि का चित्रण किया गया है। अल्पसंख्यक विमर्श समकालीन विमर्श के रूप में उभरा है जिसने हिन्दी उपन्यासकारों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। समकालीन समय में स्त्री लेखन भी तेजी से उभरकर सामने आया है जिसमें स्त्री लेखिकाओं ने हिन्दी साहित्य लेखन को एक नई भूमि दी है जो राजनीति, मानवीय सम्बन्ध, सामाजिक व्यवस्था, स्त्री नियति और शोषण जैसे अनेक प्रश्नों से निर्मित हुयी है। समकालीन महिला लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, राजी सेठ, मन्नू भण्डारी, नासिरा शर्मा, ममता कालिया,रमणिका गुप्ता, प्रभा खेतान, मृदुला गर्ग आदि बहुत सी लेखिकाओं ने हिन्दी साहित्य में उपस्थित होकर समकालीन विमर्शों को एक नया आयाम दिया है। इन लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में आज के जीवन का सजी चित्रण किया है। नयना के शब्दों में ''आज का उपन्यास सामाजिक जीवन की समस्याओं से सीधे सामना करता हे। प्रतिदिन बदलने वाले जीवन और परिवेश से उपन्यासकार का साक्षात्कार होता है।[६] इस विषय में ज्योतिष जोशी कहते हैं कि ''२०वीं शताब्दी के अन्त में आने वाले अनेक प्रश्नों और समस्याओं से जूझता हुआ हिन्दी उपन्यास अपनी एक सशक्त धारा मुस्लिम और महिला लेखन के माध्यम जिस सोपान तक पहुंचा है वहां तक वह पहले निश्चित रूप से नहीं था।''[७] सही मायनों में हिन्दी उपन्यासों में समकालीन विमर्श की अवधारणा १९८०-९० के दशक की है जहाँ उपन्यासों में दलित, स्त्री, आदिवासी आदि के रूप में ये विमर्श सशक्त रूप में उभरते हैं और उपन्यासकार अपने उपन्यासों के माध्यम से इसे और गति प्रदान करते हैं। आज हमारे समकालीन

Received: 25.04.2020 Accepted: 19.05.2020 Published: 20.05.2020

समाज और साहित्य में बहुत कुछ ऐसा घट रहा है या विगत वर्षों में घट चुका है जिसके कारण समाज और साहित्य की समझ में भी परिवर्तन आया है। वर्तमान भारतीय व्यवस्था मुक्त बाजारवादी व्यवस्था बन गयी है जिससे संचार क्रान्ति का फैलाव हुआ है। इस संचार क्रान्ति ने जीवन को अनेक कोणों से प्रभावित किया है जिससे लोगों की जीवन शैली के साथ-साथ विचारों में भी परिवर्तन हुआ है। इन परिवर्तनों ने समाज के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप को भी व्यापक रूप से परिवर्तित कर दिया है।

हिन्दी साहित्य में कथा साहित्य वर्तमान समय की केन्द्रीय प्रवृत्ति है जो सर्वाधिक मात्रा में लिखा जा रहा है। इस तरह समय में परिवर्तन के साथ उपन्यास की आन्तरिक संरचना में भी व्यापक बदलाव आ गया है। हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा हिन्दी साहित्य का एक अभिन्न अंग है। आज के उपन्यासों को गौर से देखने पर पता चलता है कि उनमें सूचनाओं और घटनाओं का विशाल भण्डार है। आज वर्तमान समय के विविध विषयों को लेकर उपन्यास रचना की जा रही है। बीसवीं शती के अन्तिम दो दशकों की औपन्यासिक यात्रा जितनी बहुरंगी रही है उतनी ही संरचनात्मक विविधताओं से भी भरी रही है। ज्योतिष जोशी के अनुसार- ''समकालीन विमर्शों का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जो इन उपन्यासों में उभरकर न आया हो। अपने अकेले में ही नहीं वरन पूरे समुच्चय में ये उपन्यास एक बड़े विमर्श में ले जाते हैं जिनमें समकालीन भारतीय जीवन के बुनियादी प्रश्नों के साथ-साथ व्यवस्था के पाखण्ड और वैश्विक स्तर पर प्रभावी स्थितियों की भी पड़ताल है।''[८]

आज के समकालीन हिन्दी उपन्यासों में व्यक्ति और समाज दोनों की चिन्ता है और दोनों की संवेदनाओं को कुन्द करने वाली व्यवस्थाओं की पहचान भी है। आज के उपन्यास पहले की तरह केवल चित्रण, वक्तव्य या कथा नहीं हैं। बल्कि उपन्यासकार का स्वयं अपने साथ, समाज और व्यवस्था के साथ सीधा संघर्ष है। ''अगर २०वीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों की यात्रा पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि इस अवधि में आये उपन्यासों में जहाँ शिल्प की सजगता है वहीं कथ्य के स्तर पर भी नई चुनौतियों से जूझने की तत्परता दिखाई देती है। इन उपन्यासों में व्यक्ति भी है तो समाज भी, व्यवस्था भी है तो राजनीतिक सजगता भी। हिन्दी उपन्यास सामाजिक बदलावों के साथ भी खड़े दिखते हैं तो वैश्विक प्रश्नों पर विमर्श भी करते हैं।''[९]

Received: 25.04.2020 Accepted: 19.05.2020 Published: 20.05.2020

इस प्रकार समकालीन विमर्शों के सन्दर्भ में हिन्दी उपन्यासों के ऐतिहासिक परिदृश्य को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन उपन्यासों में तत्कालीन समाजिकता निश्चित रूप से रही है जिनमें इन समकालीन विमर्शों का रूप तो दिखाई देता है किन्तु ये विमर्श आज के वर्तमान रूप में न होकर तत्कालिक रूप में उपन्यासों में थे जिनमें दलित स्त्री, आदिवासी आदि को लेकर लिखा गया है किन्तु आज समकालीन समय में ये विमर्श उपन्यासों में नये उभारों के साथ आये हैं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

१. अजय तिवारी-नया ज्ञानोदय (सं. रवीन्द्र कालिया) मई २०१०, पृष्ठ-१०८-९
२. सं० रवि कुमार गोंड- समकालीन विमर्श, मुद्दे और बहस, (संपादकीय से) महेन्द्र प्रताप सिंह अनंग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं० २०१४
३. डॉ०-चन्द्रकांत वांदिकडेकर-आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सृजन और आलोचना, नेशनल पब्लिशिंग, नई दिल्ली, पृष्ठ-१५
४. गोपालराय-हिन्दी उपन्यास का इतिहास पृष्ठ-२२, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००५
५. वही-पृष्ठ-२३
६. नयना- समकालीन उपन्यास, रचना और परिवेश, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०१२, पृष्ठ-२०
७. ज्योतिष जोशी- उपन्यास की समकालीनता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण २०१०, पृष्ठ-१२०
८. वही-पृष्ठ-८
९. वही- पृष्ठ-३१

Received: 25.04.2020 Accepted: 19.05.2020 Published: 20.05.2020